• श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गौ जयतः •

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेन कथासु यः ।

भागवत-पत्रिका

नोत्पादयेद् यदि रतिं श्रम एव हि केवलम् ॥

अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मासुप्रसीदति ॥

सर्वोत्कृष्ट धर्म है वह जो आत्मा को आनन्द प्रदायक ।
भक्ति अधोक्षज की अहैतुकी विघ्नशून्य अति मंगलदायक ॥

सब धर्मों का श्रेष्ठ रीति से पालन करते जीव निरन्तर ।
किन्तु हरि-कथा-प्रीति न हो, श्रम व्यर्थ सभी, केवल बंधनकर ॥

वर्ष १० { गौराब्द ४७८, मास— हृषिकेश २४, वार—अनिरुद्ध बुधवार, ३१ भाद्र, सम्वत् २०२१, १६ सितम्बर १९६४ } संख्या ४

श्रीश्रीनरोत्तम-प्रभोरष्टकम्

[श्रील-विश्वनाथ-चक्रवर्त्ति-ठक्कुर-विरचितम्]

श्रीकृष्णनामामृतवर्षि-वक्त्रचन्द्रप्रभा-ध्वस्त-तमोभराय ।
गौराङ्गानुचराय तस्मै नमो नमः श्रील-नरोत्तमाय ॥१॥

संकीर्त्तनानन्दज-मन्दहास्य-दन्तद्युति-द्योतित-दिङ्मुखाय ।
स्वेदाश्रु-धारा-स्नपिताय तस्मै नमो नमः श्रील-नरोत्तमाय ॥२॥

मृदंगनाद-श्रुतिमात्र-चञ्चत्-पदाम्बुजामन्द मनोहराय ।
सद्यः समुद्यत्-पुलकाय तस्मै नमो नमः श्रील-नरोत्तमाय ॥३॥

गन्धर्व-गर्व-क्षपण-स्वलास्य-विस्मापिताशेष-कृतिव्रजाय ।
स्वसृष्ट-गान-प्रथिताय तस्मै नमो नमः श्रील-नरोत्तमाय ॥४॥

आनन्द-मूर्च्छावनिपात-भात-धूलिभरालङ्कृत-विग्रहाय ।
यद्दर्शनं भाग्यभरेण तस्मै नमो नमः श्रील-नरोत्तमाय ॥५॥

स्थले-स्थले यस्य कृपा प्रपाभिः कृष्णान्यतृष्णा जनसंहतीनाम् ।
निर्मूलिता एव भवन्ति तस्मै नमो नमः श्रील-नरोत्तमाय ॥६॥

यद्भक्तिनिष्ठोपल - रेखिकेव स्पर्शः पुनः स्पर्शमणीव यस्य ।
प्रामाण्यमेवं श्रुतिवद् यदीयं तस्मै नमः श्रील - नरोत्तमाय ॥७॥

मूर्त्तेव भक्तिः किमयं किमेष वैराग्यसारस्तनुमान्नृलोके ।
संभाव्यते यः कृतिभिः सदैव तस्मै नमः श्रील - नरोत्तमाय ॥८॥

श्रीराधिकाकृष्ण-विलास - सिन्धौ निमज्जतः श्रील - नरोत्तमस्य ।
पठेद् य एवाष्टकमेतदुच्चैः रसौ तदीयौ पदवीं प्रयाति ॥९॥

कारुण्यदृष्टि-शमिताश्रित-मन्तुकोटि-रम्याधरोद्यदति सुन्दर-दन्तकान्तिः ।
श्रीमन्नरोत्तम-मुखाम्बुज-मन्दहास्यं लास्यं तनोतु हृदि मे वितरत्-स्वदास्यम्।१०।

राजन्मृदङ्ग- करताल-कलाभिरामं गौराङ्गगान-मधुपान-भराभिरामम् ।
श्रीमन्नरोत्तम-पदाम्बुज-मञ्जु नृत्यं भृत्यं कृतार्थयतु मां फलितेष्टकृत्यम् ॥११॥

अनुवाद—

जो श्रीकृष्णनामामृतकी वर्षा करनेवाले अपने मुखचन्द्रकी प्रभासे सबके अज्ञानरूप अंधकारको दूर करते हैं, उन श्रीगौराङ्गदेवके अनुचर श्रीनरोत्तम ठाकुरको मैं पुनः-पुनः प्रणाम करता हूँ ॥१॥

हरिसंकीर्त्तनके समय जिनके मन्द-मधुर हास्य करनेसे दिग्बन्धुओंका मुखमण्डल खिल उठता है और उस समय घर्म तथा नयन-नीरकी धाराओं में जो स्नान किया करते हैं, उन श्रीनरोत्तम ठाकुरको मैं पुनः पुनः नमस्कार करता हूँ ॥२॥

जो मृदङ्गकी ध्वनि श्रवण करते ही अपने चञ्चल चरणकमलोंद्वारा सबका चित्त चुरा लिया करते हैं, हरिसंकीर्तनमें प्रवेश करते ही जिनके शरीरमें पुलक हो उठता है, उन श्री नरोत्तम ठाकुरको मैं पुनः-पुनः प्रणाम करता हूँ ॥३॥

जिन्होंने अपने नृत्य-नैपुण्यसे गन्धर्वोंका गर्व चूर्ण-विचूर्ण कर सुधीवर्गको विस्मित कर दिया है और स्वरचित मधुर गानोंद्वारा सर्वत्र ही प्रतिष्ठाको प्राप्त किया है, उन श्रीनरोत्तमठाकुरको मैं पुनः-पुनः नमस्कार करता हूँ ॥४॥

प्रेमानन्दमें भरकर भूलुण्ठित होने पर जिनका सारा अङ्ग धूलिराशिसे अलंकृत हो जाता है और अनेक पुण्यके बलसे जिनका साक्षात दर्शन प्राप्त होता है, उन श्रीनरोत्तम ठाकुरको मैं पुनः-पुनः प्रणाम करता हूँ ॥५॥

जो स्थान-स्थान पर कृपारूप जलसत्र (प्याऊ) की स्थापना कर लोगोंकी श्रीकृष्ण भिन्न इतर तृष्णा अर्थात् विषय वासनाको जड़से ही निर्मूल कर देते हैं, उन श्रीनरोत्तम ठाकुरको मैं पुनः-पुनः प्रणाम करता हूँ ॥६॥

जिनकी भक्ति-निष्ठा पाषाणकी रेखाकी भाँति प्रतीयमान होती है, जिनका पद-स्पर्श स्पर्शमणिकी भाँति सर्वप्रकारके अभीष्टोंको देनेवाला है और जिनके वचन वेदवाक्यकी तरह प्रामाणिक होते हैं, उन श्रीनरोत्तम ठाकुरको मैं पुनः-पुनः प्रणाम करता हूँ ॥७॥

इस मनुष्यलोकमें जिनका दर्शनकर बुद्धिमान व्यक्ति परस्पर ऐसा कहते हैं कि—यह पुरुष क्या मूर्तिमती भक्ति तो नहीं है? अथवा वैराग्यका सारांश तो नहीं है ? उन श्रीनरोत्तम ठाकुरको मैं पुनः-पुनः प्रणाम करता हूँ ॥८॥

जो सदा-सर्वदा श्रीराधाकृष्णके विलास सागरमें निमग्न रहते हैं, उन श्रीनरोत्तम ठाकुरके इस अष्टक का जो उच्च-स्वरसे पाठ करते हैं, वे अवश्य ही तत्पदवीको लाभ करेंगे ॥९॥

रम्य अधरसे निःसृत अति सुन्दर दशनकान्तिसे युक्त, आश्रितजनके करोड़ों अपराधोंको नष्ट करने वाले और कृपादृष्टिविशिष्ट श्रीनरोत्तम ठाकुरके मुख-पद्मका स्मित हास्य मुझे स्वदास्य प्रदानकर मेरे हृदयमें नृत्य करें ॥१०॥

मृदङ्ग और करतालोंकी अतिशय मधुर ध्वनिसे अत्यन्त उन्मत्त होकर श्रीगौराङ्गदेवके गुणगानरूप मधुका पान करते हुए श्रीनरोत्तम ठाकुरके चरण-कमलोंका अति मनोरम नृत्य, इस भृत्यको इष्टफल प्रदान कर कृतार्थ करे ॥११॥

श्रीबलदेव-प्रसङ्ग

[श्रीश्रीबलदेव प्रकटोत्सवके अवसर पर श्रील प्रभुपादका भाषण]

मङ्गलाचरण

वांछाकल्पतरुभ्यश्च कृपासिन्धुभ्य एव च।
पतितानां पावनेभ्यो वैष्णवेभ्यो नमो नमः ॥
अज्ञान-तिमिरान्धस्य ज्ञानांजन-शलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥
नमो महावदान्याय कृष्ण-प्रेम-प्रदाय ते।
कृष्णाय कृष्णचैतन्यनाम्ने गौरत्विषे नमः ॥

जीवकी प्रेयो ग्रहण-पिपासा

वर्तमान समयमें हम सब इस पृथिवीमें अर्थात् चर्म-चक्षुओंसे देखे जानेवाले संसारमें निवास करते हैं। यहाँ पर हमें दृश्य वस्तुओंमें अनेक प्रकारके भेद दीख पड़ते हैं। हम जिन वस्तुओंके बाहिरी रूपों को देखते हैं उन वस्तुओंसे हम अपने स्वतंत्र भावसे अधिष्ठित व्यक्तिगत स्वत्वको भी समझ सकते हैं। कभी-कभी हम बाहरी संसारकी वस्तुओंके अतिरिक्त अंतर्जगत्की सूक्ष्म वस्तुओंकी आलोचना करने की इच्छासे अपनी-अपनी अन्तर्वृत्तियोंकी परिचालना करते हैं। चक्षु और नेत्र आदि इन्द्रियोंसे हम बाहरी संसारके ज्ञानका संचय करते हैं। बाहरी

संसारके संचित ज्ञानको ग्रहण करके हम ज्ञान-परिचालनका जो फल प्राप्त करते हैं, उसीसे परिचालित होते हैं। किन्तु इन्द्रियों द्वारा की गई अन्तर्जगत्की आलोचना नाना प्रकारसे प्रतिक्षणमें विफल हो सकती है । बाहरी संसारके संचित-ज्ञानकी आलोचनाके फलसे हम लोगोंके चित्तमें वस्तुके दो भाव आकर उपस्थित होते हैं। वस्तुके उन भावोंमें जो अच्छा लगता है उसीको हम ग्रहण करते हैं। जो अच्छा नहीं लगता उसे छोड़ देते हैं। हमें जो कुछ अच्छा लगता है, प्रारम्भमें अच्छी लगनेवाली वे सभी वस्तुएँ परिवर्तनशील हैं । "हमारा भावी मंगल सचमुच किस प्रकार हो सकता है?" यह विचार हृदयमें आते ही 'जो अच्छा नहीं लगता' उसे हम छोड़ सकते हैं; किन्तु हमारी प्रेयोवस्तु ग्रहण की पिपासा प्रबल बनी रहती है। जिससे हम सबों का वास्तविक मंगल हो सकता है उस प्रकारकी वस्तु को ग्रहण करनेकी हममें बुद्धि नहीं है। मनुष्य बहुधा प्रेयोवस्तु ग्रहण करनेकी असुविधामें ही पड़ जाते हैं।

श्रुत्युक्त प्रेयः और श्रेयः पंथ

वेद शास्त्रमें दो बातें पायी जाती हैं—"प्रेयःपंथ" और "श्रेयःपंथ"। जिस प्रकार हरीतकी (हर्रे) पहले खानेमें तो कड़वी लगती है पर बादमें गुणकारी होती है, उसी प्रकार मीठी वस्तु पहले तो खानेमें अच्छी लगती है किन्तु परिणाममें आँव पैदा कर देती है। हममें से कोई भी अपनेको अप्रिय लगने वाले व्यापारमें नहीं लगना चाहता, किन्तु श्रेयोलाभ के लिए प्रेयः का परित्याग करना ही उचित है, यही शास्त्रका कहना है।

प्रेयः पंथके परित्यागमें ही आत्मधर्मग्रहणकी प्रवृत्ति होती है

प्रेयःपंथ को छोड़कर श्रेयःपंथ ग्रहणकी योग्यता हम लोगोंमें हर समय नहीं होती, परन्तु जब तक प्रेयःपंथको नहीं छोड़ते तब तक आत्मधर्म-ग्रहण की प्रवृत्ति भी नहीं होती । उपनिषद्में लिखा है (कठ २ । २३; मुण्डक ३।२।३)—

"नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन ।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम् ।"

श्रेयःपंथियोंका ही श्रौतपंथ है

श्रौतपंथियोंके मुखसे सर्वदा एक बात सुनी जाती है वह है—श्रौतपंथ । अगर सत्य वस्तुका कीर्तन हो और वह कानोंमें प्रवेश करे तभी हम श्रौतपंथको ग्रहण कर सकते हैं । सुननेमें यदि हम असावधान रहे तो सत्य वस्तुका पूरा ज्ञान हमें नहीं हो सकता।

अनुकरण और अनुसरण

श्रौतपंथको ग्रहण करनेके समयमें भी हम दो प्रकारसे वञ्चित हो सकते हैं । अनुगमन करना प्रत्येक व्यक्तिको नसीब नहीं होता। बहुतसे मनुष्य 'अनुकरण' कार्य को 'अनुसरण' कहकर भ्रम उत्पन्न करते हैं। 'अनुकरण' और 'अनुसरण' इन दोनोंके भेदको समझानेके लिए छोटा सा उदाहरण दिया जाता है। किसी अभिनय (नाटक) में 'नारद' बननेवाला अभिनेता जब 'नारद' की वेशभूषाके अनुसार अपनी वेशभूषा बनाता है तब उसका वह काम नारदका "अनुकरण" करना कहलाता है और जब कोई भक्त नारदके बताये हुए भक्ति-पथ पर

चलता है तब उसका वह कार्य "अनुसरण" कहलाता है। थोड़ेसे शब्दोंमें अगर कहा जाय तो दिखावटी ढङ्गसे नकल करनेका नाम "अनुकरण" है और सच्चे दिलसे महाजनोंके दिखाये हुए मार्ग पर चलनेका नाम "अनुसरण" है।

मायाकी वंचनासे सावधान रहने की आवश्यकता

हम सोचते हैं कि हम अनुसरण कर रहे हैं किन्तु वास्तवमें हम अनुकरण कर बैठे हैं। "अनुसरण" अर्थात् अपना आचरण। केवल "अनुकरण" कार्य से "अनुसरण" कार्य नहीं होगा। "अनुकरण" (Imitation) विकृत् रूपसे प्रतिबिम्बित होने का एक विषय मात्र है। "अनुकरण" और "अनुसरण" ये दोनों कार्य बाहरसे देखने पर एक ही ढङ्गके दिखाई पड़ते हैं। नकली सोना (Chemical gold) और असली सोना (Pure gold) बाहरसे देखने पर लगभग एक से ही जँचते हैं। "अनुकरण" को हम सीधी सादी भाषा में ढोंग कहते हैं। हम लोगोंके हृदयमें 'विप्रलिप्सा' नामक जो एक वृत्ति है उसीके द्वारा हम दूसरोंको धोखा देकर अपनी प्रतिष्ठा आदि बढ़ानेके लिए उस प्रकारका ढोंग या अनुकरण करते रहते हैं। श्रौतपंथका केवल 'अनुकरण' होनेसे 'अनुसरण' नहीं होता। अनुकरण कार्यसे यदि अनुसरण नहीं होता तो फिर उस कार्यका कोई मूल्य नहीं है। वास्तवमें अनुसरण ही करना होगा। अनुकरण हो या न हो उसकी कोई आवश्यकता नहीं है।

दिखावटी वैष्णवता ही अनुकरण या ढोंग है

"ये कण्ठलग्न-तुलसी-नलिनाक्ष - माला,
ये वाहुमूलपरिचिह्नितशंखचक्राः ।
ये वा ललाटफलके लसदूर्ध्वपुण्ड्रा-
स्ते वैष्णवा भुवनमाशु पवित्रयन्ति ॥

अर्थात् जो कण्ठदेशमें तुलसी या कमल गट्टे की माला धारण करते हैं, जो अपनी बाहुओंके मूल में शंख चक्र आदिके चिह्न दगवाते हैं, जिनका ललाट ऊर्द्ध्वपुण्ड्रसे समुज्ज्वल रहता है वही वैष्णव इस संसारको तुरन्त पवित्र करते रहते हैं।

यह बात तो बहुत ही सत्य है, परन्तु इस कार्य को कोई भी मनुष्य कपट करता हुआ भी "अनुकरण" कर सकता है। बाहरी मनुष्योंको दिखानेके लिए वह उस प्रकार सज भी सकता है; किन्तु इस स्थान पर अनुकरण करनेवालोंको "वैष्णव" नहीं कहा जाता। यहाँ तो भीतर और बाहर दोनों की ही चर्चा हो रही है।

भक्तकी देहमें चिन्मय भगवन्मन्दिर

जीवकी देह भगवन्मन्दिर अर्थात् चेतनमय मन्दिर है। ईंट, पत्थर और लकड़ीसे बने हुए मन्दिर में लेप्या और लेख्यादि प्रतिमाएँ रक्खी जाती हैं। भगवद्भक्तके चिन्मय देह-मन्दिरमें श्रीभगवान् नित्य विराजमान रहते हैं। इसीलिए भक्तकी देह को चिदानन्दमय कहा गया है। भक्तका भगवत्-प्रसाद आदि ग्रहण भगवान्के मन्दिरकी रक्षाके लिए चेष्टा छोड़कर और कुछ नहीं है।

वसुदेवमें बलदेव-वासुदेवका आविर्भाव

भगवान् वासुदेव और बलदेव वसुदेवमें प्रकटित हुए। श्रीमद्भागवतमें लिखा है (भा० ४।३।२३)—

"सत्त्वं विशुद्धं वसुदेव - शब्दितं
यदीयते तत्र पुमानपावृतः ।
सत्त्वे च तस्मिन् भगवान् वासुदेवो
ह्यधोक्षजो मे मनसा विधीयते ॥

भागवतमें बहुरूपिणी मूर्त्तिपूजाका नैराश्य

काठके बने हुए ईश्वर, मिट्टीके बने हुए ईश्वर, या मनःकल्पित निराकार और साकार आदि मनके धर्मसे उत्पन्न हुए ईश्वरके विषयकी उत्तम मीमांसा इसी श्लोकमें कर दी गई है।

(भा० १०।८४।१३)—

"यस्यात्मबुद्धिः कुणपे त्रिधातुके
स्वधीः कलत्रादिषु भौम इज्यधीः ।
यत्तीर्थबुद्धिः सलिले न कर्हिचित्—
जनेष्वभिज्ञेषु स एव गोखरः ॥

जो मूर्तिपूजा 'बुतपरस्ती' या बाहरी संसार के अनुष्ठानोंको भगवान्‌की सेवा कहकर अनुमान करते हैं, उनके कार्यकी निन्दा करनेके लिए ही यह श्लोक है।

प्रेयःपंथी बलदेवसे विमुख रहते हैं

प्रेयः-पंथी इन्द्रियपरायण होते हैं। जो अधोक्षज श्रीभगवान् वासुदेव या वसुदेव-तनय बलदेवके निकट नहीं जाना चाहते, बगलें झाँककर दूसरी बातों में लगे रहना चाहते हैं, वे प्रेयःपंथी हैं।

अविनाशी सत्त्व ही वसुदेव हैं

रजोगुणसे वस्तुकी सृष्टि होती है। सत्त्वगुण से वह स्थित होती है और तमोगुणसे उसका ध्वंस होता है। इन्हीं तीनों गुणोंके सम्मिश्रणसे सांसारिक व्यापार चलता है। परन्तु अविमिश्र सत्त्व या विशुद्ध सत्त्व ही वसुदेव हैं। जहाँ पर केवल नित्य सत्ता—अविनाशी सत्त्व रहती है, उसी वस्तुको लक्ष्य करके ही "वसुदेव" कहा जाता है। जहाँ पर कालसे क्षोभित होनेवाले धर्मकी योग्यता नहीं है उसी विशुद्ध सत्त्वमें जिस वस्तुका प्रकाश होता है वही वासुदेव हैं। विशुद्ध सत्त्व-मय आधार या मूल से जो प्रकट होते हैं वही "वासुदेव" हैं।

वसुदेवमें प्रकटित वासुदेव-अधोक्षज वस्तु हैं

'मनसा' इस शब्दसे हम भलीभाँति समझ सकते हैं कि बिना भक्तिके उनके समीप नहीं पहुँचा जा सकता। कोई-कोई कह सकते हैं कि "हम सबसे श्रेष्ठ रासायनिक, या पृथ्वीमें सबसे श्रेष्ठ तार्किक हैं। हमने समस्त दर्शन-शास्त्रको घोट-घोट कर पी डाला है। हम वासुदेव को क्यों न समझेंगे। जो हम लोगोंकी भाँति सुखमें पाले-पोषे नहीं गये, जिन्होंने हम लोगोंकी भाँति रासायनिक लेबोरेटरी (गवेषणागार) में प्रवेश नहीं किया, हम लोगोंकी भाँति तर्क-शास्त्रका अध्ययन नहीं किया, वे तो वासुदेवको समझ सकेंगे और हम उन्हें नहीं समझ सकेंगे ?" किन्तु उन्हें यह जान लेना चाहिए कि वासुदेव अधोक्षज वस्तु हैं। वे नदीका पानी, पेड़के फल अथवा इसी प्रकार रक्त मांससे बने हुए शरीरधारी नायक-नायिका नहीं है। जब तक वे स्वयं अपनेको नहीं

जनाते तब तक उन्हें कोई नहीं जान सकता। इस शक्तिको उन्होंने स्वयं अपने हाथोंमें रख छोड़ा है। जिस वस्तुको साधारण रूपसे हम आँख और कानसे जान सकते हैं वे वह पदार्थ नहीं हैं। बाहरी संसार के परमाणुवाद आदिकी भाँति यदि उन्हें विचार-गवेषणाके विश्लेषणसे जाना जा सकता, तो वे बाहिरी संसारकी ही अन्यमम वस्तु होते। बाहरी विषयोंसे होनेवाले ज्ञानसे जो ज्ञान उत्पन्न होता है, उससे जो पदार्थ समझा जायगा वह भगवान् नहीं है। वह केवल भोग करनेके योग्य पदार्थ है। जो भगवद्भक्तिको कर्मराज्यका एक प्रकारके भेदके अतिरिक्त और कुछ नहीं समझते, वे बाहरी संसार के पदार्थोंको देखकर प्राप्त किये ज्ञानसे प्रतारित होकर वास्तवमें भगवान् क्या है, सत्य क्या है? इसे नहीं समझ सकते। अधोक्षज वस्तु श्रीकृष्णको नमस्कार करना चाहिए। आनुगत्य धर्मसे उन्हें जाना जाता है। अनुकरण वृत्तिको छोड़कर यदि हम केवल महाजनोंके पंथको ग्रहण करें, उनका अनुसरण करें तभी हमारा कल्याण होगा। भगवान्‌को खजांची बनाने की चेष्टा करने पर हम लोगोंका कदापि कल्याण न होगा। जिस दिन खजांची हम लोगोंकी अभीष्ट वस्तुओंको इकट्ठा न कर सकेगा उसी दिन हम उसे निकाल देंगे। इस प्रकारके विचार उत्पन्न होते ही नास्तिक्यवाद उपस्थित होता है।

प्रेयःपंथीका आदर्श

बहुधा हम लोग विचार करते हैं कि चार्वाक, एपिकिउरस, हक्सुल, कामते आदि मनीषियोंने कितना सूक्ष्म विचार किया है। न हो तो उन्हींका अनुसरण करें, किन्तु किसी भी दिन ऐसा विचार नहीं करते कि श्रीव्यासदेवका अनुसरण करें।

बलदेव-गुरुपादपद्ममें आत्मसमर्पण ही मङ्गल का सेतु है

श्रुतिका कहना है (मुण्डक ३।२।४)—
"नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः।"

गुरुदेवके पाद-पद्ममें आश्रय ग्रहण न करनेसे कल्याण नहीं होगा। जो बलदेव प्रभु तन, मन और वाणीसे कृष्ण-सेवा करते हैं उन्हींका अनुग्रह पानेसे हम लोगोंका कल्याण होता है। जब हम गुरुदेवसे व्यर्थमें तर्क करते हैं, बाहिरी ज्ञानके बल पर उनका सुधार करनेकी चेष्टा करते हैं, उनका अनुसरण न करके केवल बनावटी अनुकरण करते हैं, तब हम श्रौतपंथके स्थानमें अश्रौतपंथ या तर्कपंथका आह्वान कर बैठते हैं। जब हम समस्त दुर्बुद्धियोंको छोड़ कर उनके चरणोंमें आत्मसमर्पण करते हैं तभी श्रौतपंथके अनुसार हम सबोंको मंगल-लाभ होता है।

अपने गुरुदेवकी निरपेक्षताका आदर्श

पहले लोगोंकी यह धारणा थी कि महाप्रभुके समयके भक्तोंकी भाँति निर्लोभ वैराग्यवान आदर्श भक्त और कभी नहीं हो सकते, परन्तु मेरे गुरुदेवने अपने आदर्शसे लोगोंकी उस धारणाको दूर कर दिया। उन्होंने अपने लिये कभी कोई मकान नहीं बनाया। कभी किसीसे एक लोटा पानी तक की भी दुर्बुद्धिने उनके मनमें प्रवेश नहीं की। उन्हीं महापुरुषका अनुकरण करनेवाले मुझ जैसे अनेक

पाखण्डी भी थे। गुरुदेव वर्णमालाका एक भी अक्षर नहीं जानते थे फिर भी उन जैसा पण्डित मैंने कहीं नहीं देखा। उनके चरित्रसे ही श्रीमद्भागवतका उद्देश्य प्रकट हो जाता है। उनका अनुकरण करके उनकी ही भाँति धूल फाँकना हमने भी आरम्भ किया। देवमन्दिरमें जाकर नैवेद्यका केला खा आये। नारायणका यज्ञोपवीत चुरा लाये, परन्तु उनके पादपद्ममें अपराध करनेके सिवा हमसे और कुछ भी न बन पड़ा। चूनेका पानी और दूध देखनेमें तो एक हैं, परन्तु दूधके पीनेसे चित्त प्रसन्न होता है, शरीर पुष्ट होता है और चूनेका पानी पीनेसे गला जल जाता है, अधिक पीनेसे रोग उत्पन्न होता है। इसी प्रकार अनुकरण करनेसे सदा प्रमाद ही होता है। बलदेव प्रभु मधुपान करते हैं। कृष्णचन्द्र ताम्बूल सेवन करते हैं, पारकीय विचारमें रासलीला करते हैं; उनका अनुकरण करनेसे जीवका सर्वनाश होता है परन्तु अनुसरण करनेसे परम मङ्गलकी प्राप्ति होती है।

गौर-नित्यानंदका आचार और प्रचार एक तात्पर्यमय है

बहुतसे लोगोंका विचार है कि महाप्रभुने एक प्रकार समाजकी शृंखलाको बना रखा है, वर्णाश्रम धर्मकी मर्यादाको अटूट बना रक्खा है, परन्तु नित्यानन्द प्रभुने समाजमें विशृंखला ला दी है। किन्तु वास्तवमें उन दोनोंके कार्य एक ही उद्देश्यमय हैं अन्यथा महाप्रभु नित्यानन्द प्रभुको इतना बड़ा कदापि न कहते। इन बातोंको जो समझा देते हैं वही भगवान्के प्रकाश-विग्रह हैं। हृदेशमें "सत्त्वं विशुद्धं" (भा० ४।३।२३) इस श्लोककी आलोचना होते ही हम जान सकते हैं कि वे कौन वस्तु हैं।

अधोक्षज-श्रीभगवत् पादपद्ममें आशाका संचार

अक्षज ज्ञानसे हम जिस वस्तुको देखते हैं वह भगवत् शब्द वाच्य नहीं है, किन्तु इस प्रकारकी बातोंको सुन निराश होनेका भी कोई कारण नहीं है:—

"विश्व विदित गौरांग हरि हैं मेरे प्रभु के प्रभुवर।
इसीलिए है बड़ा भरोसा मुझको चितके भीतर।"

प्रणिपात, परिप्रश्न और सेवासे ही अधोक्षज अधिगम्य है

अभिज्ञानवाद (Empiricism) से कदापि वास्तव सत्यके निकट नहीं जाया जा सकता! यदि हम तर्क करनेकी इच्छा त्याग कर (गीता ४।३४) "तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।" गीताके इस वाक्यका सम्मान करें, तभी वास्तविक सत्य पायेंगे।

"ज्ञाने प्रयासमुदपास्य नमन्त एव
जीवन्ति सन्मुखरितां भवदीय वार्त्ताम्।
स्थाने-स्थिता श्रुतिगतां तनुवाङ्मनोभि-
र्ये प्रायशोऽजित जितोऽप्यसितं स्त्रिलोक्याम्॥

(भा० १०।१४।३)

(हे भगवन्, निर्भेद ब्रह्मचिन्ता रूप ज्ञान-चेष्टा को सम्पूर्ण रूपसे त्याग करके जो साधुओंके मुखसे निकली हुई आपकी कथाको सुनते हैं और तन मन वाणीसे साधुओंके पंथमें रहकर जीवन निर्वाह करते

हैं उनके निकट आप त्रैलोक्यमें दुर्लभ होने पर भी सुलभ हो जाते हैं।)

हरिकथाके श्रवण और कीर्तनमें ही जीवका मंगल है। "हरि कथा" क्या है? "साधु" कौन हैं?

"म" कार का अर्थ है "अहंकार"; "न" कार का अर्थ है "निषेध"। यदि हम जड़ जगत्की सेवा के नशेका सेवन बन्द कर दें और एकान्तभावसे एकमात्र भगवान्की सेवामें लग जायँ, तभी हमारा कल्याण होगा। अधिक ज्ञान संग्रहसे अधिक भोग-लालसा बढ़ जाती है। जिनके शरीरमें अधिक बल है, वे क्या सत्यका अनुभव कर सकेंगे? प्राकृत-विज्ञानवित् या मनोविज्ञानवित् होनेसे ही क्या भगवत्तत्त्वको समझ सकेंगे? कदापि नहीं। "भवदीय वार्त्ता" अर्थात् श्रीहरिकी कथा जब तक न सुनी जायगी तब तक जीवका कल्याण नहीं हो सकेगा। मैं बाहिरी इन्द्रियोंके भोगने योग्य वस्तुओं की चर्चा नहीं कर रहा अथवा जिससे हम लोगोंको इन्द्रिसुख प्राप्त हो उस प्रकारकी बातें भी नहीं कहता। वास्तवमें जिससे भगवान्की इन्द्रियोंको सुख हो—इस प्रकारकी कथाका नाम ही "हरिकथा" है। जटाजूट धारण करनेसे, त्यागी बननेसे या बड़ा गृहस्थ होनेसे ही कोई "साधु" नहीं हो सकता। सर्वदा हरिकथामें निरत रहने वालेका नाम ही साधु है। सर्वदा श्रीभगवान्की सेवाके लिए व्यस्त बने रहने वालेका ही नाम साधु है। नित्य काल और प्रतिपलमें जो सभी चेष्टाओं से कृष्णके लिए व्यस्त रहते हैं, जिनकी सभी चेष्टाएँ भगवान्की सेवाके लिए होती हैं, वही साधु हैं।

अनुकरण करनेवाले कीर्तनकारी नहीं हैं

मूर्ख भी उन्हें (अजित भगवान्को) अपनी सेवाओंसे जीत सकता है, किन्तु अभिमानी पंडित उन्हें कदापि नहीं जीत सकता। भगवद्भक्त श्रुति-वाक्यका अनुसरण करते हैं। वे अनुकरण कदापि नहीं करते। अनुकरण करना तो बहुत ही सरल है। हम लोग बहुधा साधकोंका अनुकरण करते हैं; किन्तु यह स्मरण रखना चाहिए कि साधुओंका अनुसरण न करके केवल अनुकरण करना उनका उपहास करना ही है। साधुओंका अनुकरण करके तरह-तरहके रूप बनाते हैं। कभी रोते हैं, कभी थर्रा उठते हैं, कभी प्रसन्न होते हैं, इसी तरह न जाने क्या-क्या करते हैं। पुनश्च गौरसुन्दर और गौर-भक्तोंका अनुकरण करके हम हैजा आदि महामारियों को दूर करनेके उद्देश्यसे कीर्तन करते हैं, कभी व्यवसायी भागवत कथावाचक या पाठक हो बैठते हैं और कभी शूद्र रहकर मंत्रदाता गुरु बन जाते हैं, इत्यादि।

हरिकीर्तनमें सर्वार्थ सिद्धि है यथार्थ मुक्ति क्या है?

"हरिकीर्तन" साधारण वस्तु नहीं है। हरिकीर्तनसे सर्वार्थ सिद्धि होती है। जीवोंको परमावश्यक प्रेम लाभ होता है। अतएव ऐसे हरिकीर्तनका क्षुद्र

भोग या मोक्षके लिये बनियेके आटा, दाल, चावल आदिकी भाँति व्यवहार नहीं किया जा सकता। कैतव अर्थात् छलना राज्यकी मुख्य अधिवासिनी "मुक्ति" है। प्रकृत मुक्तको कौन लाभ करेगा? उस मुक्तिको वही पा सकता है जो कि बन्धनकी दशासे उत्तीर्ण होनेकी प्रवृत्तिको प्राप्त करता है। जो आशाके जालमें फँसा हुआ है, उसका उस जालसे छुटकारा पाना ही वास्तविक मुक्ति है।

फल्गु-त्याग अथवा नकली वैराग्यका आदर्श

मैं एक कहानी कहता हूँ। एक समय एक लकड़हारा जङ्गलसे लकड़ीका एक बड़ा बोझ मस्तक पर लादे हुए चला आ रहा था। बोझ बड़ा वजनदार था। रोटीके लिए बिचारेको इस प्रकार प्रति दिन कष्ट भोगना पड़ता था। इसलिए कष्ट असह्य होनेके कारण उसने बोझको पृथ्वी पर फेंक दिया और दुःख करता हुआ बोला,—"मृत्यु भी मुझे नहीं पूछती। यदि इसी समय मेरी मृत्यु हो जाती तो कहीं अच्छा था।" उसका इतना कहना था कि मृत्यु सामने आ खड़ी हुई और बोली "मैं मृत्यु हूँ। तुमने मुझे बुलाया है इसीलिए दौड़ी आई हूँ। कहो क्या कहते हो?" मृत्युको सामने देखते ही लकड़हारा घबरा उठा। उसका सारा वैराग्य न जाने कहाँ छिप गया। देहकी ममताने उसे आ घेरा। उसने काँपते हुए कहा, ऐसी कोई बात तो थी नहीं। हाँ, यह बोझ पृथ्वी पर गिर पड़ा था इसीको मस्तक पर उठाकर रख देनेके लिए मैंने आपका स्मरण किया था।"

फल्गु-त्यागियोंकी यही दशा होती है। वह वास्तवमें संन्यासी नहीं होते।

बलदेवका बल ही सर्वमंगलका खजाना है

बलदेव प्रभुका बल संचय कर सकने पर ही हम लोगोंका कल्याण होगा। तभी वास्तवमें हम लोगोंका वर्णाश्रम और पारमहंस्य धर्म सार्थक होगा। बाहरी संसारमें निस्पृहता आ पहुँचेगी। ऐसी बुद्धिका उदय होगा कि—बाहरी संसारकी किसी भी मर्यादा या किसी भी बातसे मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है। जो सर्वदा भगवान्‌की सेवा करते हैं, उन्हीं साधुओंके प्रसङ्गसे ही हम भगवान्‌की समस्त शक्तियोंके सम्बन्धमें ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। तन मन वचनसे तेजस्विनी हरिकथा सुनते सुनते हमारी आत्मामें क्रमशः श्रद्धा, रति और भक्तिका आविर्भाव होता है। बाहरी संसारकी शक्तियाँ हमें फिर कभी पराजित नहीं कर सकेंगी।

———

श्रीचैतन्य-शिक्षामृत

प्रथम वृष्टि—षष्ठ धारा

साधन-निर्णय

अबतक सात प्रमेयोंका विचार किया जा चुका है, जिनमें यह निर्णय किया गया है कि सम्बन्ध तत्त्व क्या है। उस सम्बन्ध तत्त्व-ज्ञानके द्वारा यह अवगत हुआ गया है कि जीव अपना नित्य-कृष्ण-सम्बन्ध विस्मृत होकर त्रितापज्वलित संसार-सागर में पतित होकर दुःख पा रहे हैं। वह कष्ट कैसे दूर हो—इस तथ्य पर विचार करने पर यह जाना गया कि पूर्वोक्त सम्बन्धको पुनः स्थापित करनेसे सम्पूर्ण दुःख तो दूर हो ही जायेंगे, साथ ही परमानन्दकी प्राप्ति भी हो जायगी।

विवर्तवाद

जीव नित्यसिद्ध चिद्वस्तु है। जीवको यथार्थमें कोई बन्धन या क्लेश नहीं है। केवल देहात्म अभिमान रहनेके कारण विवर्त्त भ्रमसे ऐसी यंत्रणा हो रही है। रज्जुमें सर्प भ्रम और सीपमें रजत भ्रम—विवर्त्तके ये दो वैदिक उदाहरण हैं। इन दोनों उदाहरणोंको अच्छी तरह समझ न सकनेके कारण ही मायावादी लोग जीवकी सत्ताको ही ब्रह्मका विवर्त्त माननेका भ्रम करते हैं अर्थात् मायावादी ऐसा कहते हैं कि जीव वास्तवमें ब्रह्म ही है भ्रमवश जीव जैसा दीख पड़ता है। परन्तु जब सद्गुरुकी कृपासे जीव यह जान लेता है कि ये दोनों उदाहरण जीवकी सत्ताके सम्बन्धमें नहीं दिये गये हैं, बल्कि ये दोनों उदाहरण जीवके स्थूल और लिङ्ग देहमें जो आत्म बुद्धि होती है, उसके ही सम्बन्धमें प्रयोग किये गये हैं, तब वह सुपथ देख पाता है। परिणाम और विवर्त्तमें भेद यह है; जब कोई वस्तु अन्य आकार धारण करती है, तब उसको विकार या परिणाम* कहते हैं। अम्लयोगसे दुग्ध विकृत होकर दधि होता है। यह परिणामका उदाहरण है। जहाँ वस्तु ही नहीं है, फिर भी वहाँपर किसी अन्य वस्तुमें अन्यथा बुद्धि होती है, तब उसे विवर्त्त कहते हैं; जैसे—सर्प नहीं है, फिर भी रज्जु (रस्सी) रूप अन्य वस्तुमें मिथ्या ही सर्पका भ्रम हो रहा है। रजत (चाँदी) नहीं है, फिर भी सीपमें रजतका भ्रम हो रहा है। इन दोनों स्थलोंमें "अतत्त्वतो अन्यथा बुद्धि रूप" विवर्त्त भ्रम है। जीव शुद्ध-चिद्वस्तु हैं। वे वस्तुतः मायाबद्ध नहीं होते, केवल विवर्त्त-बुद्धि प्रबल होने पर जिस समय आत्माको देहके साथ एक जानकर देहमें ही आत्म बुद्धि करते हैं,तभी विवर्त-भ्रम होता है। बद्धजीवकी ऐसी दुर्दशा उपस्थित होने पर

---

* अतत्त्वतोऽन्यथाबुद्धिर्विवर्त इत्युदाहृतः। सतत्त्वतोऽन्यथा बुद्धिर्विकार इति शब्द्यते॥

—कश्चित् मायावादाचार्यः

विवर्त्तका स्थल (क) लक्षित होता है। यह विवर्त्त-बुद्धि कब दूर होगी ? जब सद्गुरुके निकट सदुपदेश प्राप्त कर "मैं कृष्णदास हूँ" ऐसा अभिमान दृढ़ होगा, तभी वह विवर्त्त-बुद्धि दूर हो सकेगी (ख) अतएव मोक्षकी वासनाको परित्याग करके कृष्ण भक्ति करनेसे विवर्त्तबुद्धि सहज ही विदूरित हो जायगी। मोक्षाभिसन्धिसे स्वधर्मका साधन नहीं होता, केवल व्यतिरेक अनुशीलन हुआ करता है (ग)। अतएव भक्ति ही साधन है। अर्वाचीन लोग भक्तिको दूर रख कर या तो कर्मको अथवा ज्ञानको साधन बतलाते हैं (घ)। ज्ञान और कर्म कुछ हद तक गौणरूपमें साधन हो सकते हैं, यह ठीक है, परन्तु वे मुख्य साधन कदापि नहीं हो सकते हैं (ङ)। सनातन शिक्षाके अवसर पर श्रीचैतन्य महाप्रभुजीने कहा है—

भक्ति ही अभिधेय है

"कृष्णभक्ति हय अभिधेय प्रधान।
भक्तिमुख निरीक्षक कर्म, योग, ज्ञान॥"
सेइ सब साधनेर अति तुच्छ फल।
कृष्णभक्ति बिना ताहा दिते नारे बल॥
केवलज्ञान मुक्ति दिते नारे भक्ति बिने।
कृष्णोन्मुखे सेइ मुक्ति हय बिना ज्ञाने॥
जीव कृष्णनित्यदास ताहा भूलि गेल।
एइ दोषे माया तार गलाय बान्धिल॥
ताते कृष्ण भजे करे गुरुर सेवन।
माया जाल छुटे पाय कृष्णेर चरण।
चारो वर्णाश्रमी यदि कृष्ण नाहि भजे।
स्वकर्म करिते से रौरवे पड़ि मजे॥
ज्ञानी जीवन्मुक्तदशा पाइनु करि माने।
वस्तुतः बुद्धि शुद्ध नहे कृष्णभक्ति बिने॥ (च)

भक्ति रहित कर्म, योग और ज्ञान निष्फल हैं

श्रीमन्महाप्रभुने कहा है कि कर्म, अष्टाङ्गयोग और ज्ञानको किसी-किसी शास्त्रोंमें साधन कहा गया है; इसलिये खण्ड बुद्धिवाले व्यक्ति इन शास्त्रोंका तात्पर्य हृदयङ्गम न कर पानेके कारण उनको मुख्य

(क) स एष यर्हि प्रकृतेर्गुणेष्वभिविसज्जते। अहङ्कारविमूढात्मा कर्त्ताहमिति मन्यते॥
तेन संसारपदवीमवशोऽभ्येत्य निर्वृतः। प्रासङ्गिकैः कर्मदोषैः सदसन्मिश्रयोनिषु॥ (भा० ३।२७।२-३)

(ख) एवं गुरूपासनयैकभक्त्या विद्याकुठारेण शितेन धीरः।
विवृश्च्य जीवाशयमप्रमत्तः सम्पाद्य चात्मनमथ त्यजास्त्रम्॥ (भा० ११।१२।२३)

(ग) यस्तु आशिषा आशास्ते न स भृत्य स वै वणिक्॥ (भा० ७।१०।४)

(घ) नालं द्विजत्वं देवत्वं ऋषित्वं वाऽसुरात्मजाः। प्रीणनाय मुकुन्दस्य न वृत्तं न बहुज्ञता॥
न दानं न तपो नेज्या न शौचं न व्रतानि च। प्रीयतेऽमलया भक्त्या हरिरन्यद्विडम्बनम्॥
(भा० ७।७।४३-४४)

(ङ) दानव्रततपो होमजपस्वाध्यायसंयमैः। श्रेयोभिर्विविधैश्चान्यैः कृष्णे भक्तिर्हि साध्यते॥ (भा० १०।४७।२१)

(च) मुखबाहूपादेभ्यः पुरुषस्याश्रमैः सह। चत्वारो जज्ञिरे वर्णा गुणैर्विप्रादयः पृथक्॥
य एषां पुरुषं साक्षादात्म प्रभवमीश्वरम्। न भजन्त्यवजानन्ति स्थानाद् भ्रष्टाः पतन्त्यधः॥(भा०११।५।२-३)

अभिधेय या साधन मान बैठते हैं। अधिकार भेद से मनुष्य अनेक प्रकारके हैं और प्रवृत्त-निवृत्त भेदसे वे दो प्रकारके हैं। उन अधिकारोंमें स्थित व्यक्ति उससे ऊपरके स्थानको प्राप्त करनेके लिए जो साधन करते हैं वह साधन गौण साधन हैं, मुख्य साधन या अभिधेय नहीं। उन साधनोंका फल केवल एक सोपान आगे बढ़ा देना मात्र है। अतएव बृहत् तत्त्व की प्राप्तिमें उन साधनोंका स्थान अतीव तुच्छ या अवान्तर है। कर्म, योग, ज्ञान और उन-उन पंथोंका उद्देश्य भक्ति न होनेसे उनमें स्वतंत्र रूपसे कोई भी फल देनेकी शक्ति नहीं होती (क)। यदि उन-उन साधकोंका चरम उद्देश्य कृष्णभक्ति हो तो वे कुछ-कुछ गौण फल प्रदान करते हैं। केवल ज्ञानसे मुक्ति नहीं होती। भक्तिके उद्देश्यसे जो सम्बन्ध ज्ञान होता है, उसका प्राथमिक फल ही मुक्ति है। भक्ति ही उस ज्ञानके भीतरसे अनायास ही अवान्तर क्षुद्र फल-स्वरूप मुक्ति प्रदान करती है। कर्मके सम्बन्धमें यह विचार है कि चारों वर्णों और चारों आश्रमोंके उपयोगी जिन-जिन कर्मोंका शास्त्रोंमें विधान है उनका ही नाम धर्म है। इसे त्रैवर्गिक धर्म कहा जा सकता है। इसी ग्रन्थके द्वितीय वृष्टिमें त्रैवर्गिक धर्मके सम्बन्धमें विवेचन किया जायगा। उसके सम्बन्धमें महाप्रभुजीका यह उपदेश है कि देहयात्रा, संसार यात्रा आदिका स्वच्छन्दतासे निर्वाह करते हुए प्रवृत्त पुरुष मुख्य वैध साधनमें बल प्राप्त होते हैं। अतएव कृष्णभक्तिके लिये उपयोगी बनाकर वर्णाश्रम धर्म का प्रतिपालन करनेके लिये अति प्रवृत्त पुरुषगण अधिकारी हैं। परन्तु जो लोग भक्तिका आचरण न करके वर्णाश्रम धर्ममें अवस्थित हैं, वे वर्णाश्रम धर्मरूप स्वधर्मका साधन करके भी नरकगामी होते हैं।

इस ग्रन्थकी तृतीय वृष्टिमें साधन भक्तिका वर्णन है। वैध-साधन ,भक्ति शुद्धभक्ति होनेपर वह प्रेम साधनके योग्य होती है।

प्रेम नित्य सिद्ध है

जीवका ईश्वरके प्रति जो प्रेम होता है, वही प्रेम जीवका स्वाभाविक नित्यधर्म है। वही वास्तविक साध्य वस्तु है। यहाँ यह वितर्क उठ सकता है कि यदि साध्य वस्तु नित्यसिद्ध है, तब वह किस प्रकार साध्य हो सकती है? श्रीमन्महाप्रभुजी इस विषय में यह कहते हैं—

',एबे साधन भक्तिलक्षण सुन सनातन।
यहा हइते पाइ कृष्णप्रेम महाधन।
श्रवणादि क्रिया तार स्वरूप लक्षण॥
तटस्थलक्षणे उपजाय प्रेमधन।
नित्यसिद्ध कृष्णप्रेम साध्य कभु नय।
श्रवणादि शुद्धचित्ते करये उदय॥

श्रीमन्महाप्रभुजीकी इन वाणियोंका तात्पर्य यह है कि प्रेम ही सिद्ध वस्तु है। जीवकी मायामोहित दशामें यह प्रेम तटस्थ लक्षणमें पाया जाता है। उस समय वह अपने स्वरूप लक्षणमें उदित नहीं होता। कृष्ण-नाम, कृष्ण-गुण, कृष्ण-रूप और कृष्ण की लीला-कथाओंका श्रवण-कीर्तन स्मरण आदि

(क) षड्वर्गसंयमैकान्ताः सर्वाः नियमचोदनाः। तदन्ता यदि नो योगा न वहेयुः श्रमावहाः॥ (भा० ७।१५।२२)

कार्य ही साधन भक्तिका स्वरूप लक्षण है*। यह साधन करते-करते छिपी हुई आगकी भाँति प्रेम पहले-पहल तटस्थ रूपमें उदित होता है और अन्त में लिंग शरीर छुटजाने पर अर्थात् वस्तु सिद्धिके समय स्वरूप लक्षणमें प्रकाशित होता है। अतएव कृष्णप्रेम सिद्धवस्तु है। वह किसी साधनसे पैदा नहीं होता, बल्कि श्रवण आदि द्वारा शुद्ध चित्तमें वह उदित हो पड़ता है। इसीसे साधनकी आवश्यकता स्पष्ट ही दीख पड़ती है।

यह साधन भक्ति दो प्रकारकी होती है—वैधी साधन-भक्ति और रागानुगा साधन-भक्ति महाप्रभुजी कहते हैं—

"एइ त साधन भक्ति दुइ त प्रकार।
एक वैधीभक्ति, रागानुगा भक्ति आर॥
रागहीनजन भजे शास्त्रेर आज्ञाय।
वैधीभक्ति बलि तारे सर्वशास्त्रे गाय॥

वैधी भक्ति

जिस समय बद्धजीवका कृष्णेतर विषयोंमें प्रगाढ़ अनुराग होता है, उस समय उसका कृष्णके प्रति अनुराग नहीं होनेके बराबर बोध होता है। ऐसी दशामें कल्याणकामी जीव केवल शास्त्रकी आज्ञासे कृष्णका भजन करता है। यह भजन ही वैधभजन है। शास्त्रके शासन वाक्यको विधि मान कर जिन सब विधि-निषेधोंको देख कर जीव कार्य करते हैं, उसीसे उनका प्राथमिक शुभ उदय होता है। यहाँ शास्त्र-वचनोंके प्रति श्रद्धा ही इसका प्रवर्तक है। वही श्रद्धा पहले कोमल, पीछे मध्यम और अंत में उत्तम होकर फल सिद्धि कराती है। जब वह श्रद्धा सत्सङ्गमें भजनद्वारा उत्तम होकर क्रमशः निष्ठा, रुचि, आशक्ति और भावावस्थाको प्राप्त होती है, तब विधि भी एक चमत्कार आकार धारण करती है। तब साधक यह जान पाता है कि कृष्ण ही एकमात्र सर्वदा स्मरणीय है और उनको कदापि भूलना उचित नहीं है। समस्त प्रकारके विधि-निषेध इन्हीं दोनों मूल विधि-निषधके किंकर है (क)। उस समय साधक भक्तिके साधनमें विधि-निषेधोंके नियमाग्रह को छोड़कर अपने अधिकारके अनुसार किसी-किसी विधिको परित्याग करता है और किसी-किसी निषेध को ग्रहण करता जाता है (ख)।

साधन भक्तिके ६४ अङ्ग

साधन भक्तिके सम्बन्धमें महाप्रभुजीके उपदेश—

"विविधाङ्ग साधनभक्ति कहत विस्तार।
संक्षेपे कहिये किछु साधनाङ्ग सार॥
गुरुपदाश्रय १, दीक्षा २, गुरुर सेवन ३।
सद्धर्म शिक्षापृच्छा ४, साधुमार्गानुगमन ५॥

---

* श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्। अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥
इति पुंसार्पिता विष्णौ भक्तिश्चेन्नवलक्षणा। क्रियेत भगवत्यद्धा तन्मन्येधीतमुत्तमम्॥ (भा० ७।५।१८-१९)

(क) स्मर्तव्यः सततं विष्णुर्विस्मर्तव्यो न जातुचित्। सर्वे विधिनिषेधाः स्युरेतयोरेव किङ्कराः॥

(ख) स्वे स्वेऽधिकारे या निष्ठा स गुणः परिकीर्तितः। कर्मणां जात्याशुद्धानामनेन नियमः कृतः॥
गुणदोष विधानेन संगानां त्यजनेच्छया॥ भा० ११।२०।२६)

कृष्णप्रीते भोगत्याग ६, कृष्णतीर्थे वास ७।
यावत् निर्वाह प्रतिग्रह ८, एकादश्युपवास ९ ॥
धात्र्यश्वत्थगोविप्र वैष्णव पूजन १०।
सेवानामापराध दूरे विसर्जन ११ ॥
अवैष्णवसङ्ग त्याग १२, बहु शिष्य ना करिब १३।
बहुग्रन्थकलाभ्यास व्याख्यान वर्जिब १४ ॥
हानिलाभसम १५, शोकादिर वश ना हइब १६।
अन्यदेवे अन्यशास्त्रे निन्दा ना करिब १७ ॥
विष्णु वैष्णव निन्दा १८, ग्राम्यवार्ता न शुनिब १९।
प्राणिमात्रे मनोवाक्ये उद्वेग ना दिब २० ॥
श्रवण २१, कीर्तन २२, स्मरण २३ पूजन २४ वंदन २५
परिचर्या २६, दास्य २७, सख्य २८, आत्म निवेदन २९ ॥
अग्रे नृत्य ३०, गीत ३१, विज्ञप्ति ३२, दण्डवन्नति ३३।
अभ्युत्थान ३४, अनुव्रज्या ३५, तीर्थगृहे गति ३६ ॥
परिक्रमा ३७, स्तव, ३८, पाठ ३९, जप ४० संकीर्तन ४१
धूप ४२, माला ४३, गन्ध ४४, महाप्रसाद भोजन ४५ ॥
आरात्रिक ४६, महोत्सव ४७, श्रीमूर्त्तिदर्शन ४८।
निजप्रियदान ४९, ध्यान ५०, तदीय सेवन ५१ ॥
तदीय ५२ (क) तुलसी ५३ वैष्णव ५४ मथुरा भागवत ५५।
एइ चारि सेवा हय कृष्णेर अभिमत ५६ ॥
कृष्णार्थे अखिल चेष्टा ५७, तत्कृपावलोकन ५८।
जन्मदिनादि महोत्सव लञा भक्तगण ५९, ६० ॥
सर्वथा शरणापत्ति ६१ कार्त्तिकादि व्रत ६२, ६३, ६४ (ख)

चतुषष्टि अङ्ग एइ परम महत्व ॥
साधुसङ्ग नामकीर्तन भागवत श्रवण।
मथुरावास श्रीमूर्त्तिर श्रद्धाय सेवन ॥
सकल साधन श्रेष्ठ एइ पांच अङ्ग।
कृष्ण प्रेम जन्माय एइ पांचेर अल्पसङ्ग ॥

श्रेणी-विभाग

इन चौसठ अङ्गोंमें श्रवण-कीर्तन आदि नौ प्रधान साधनाङ्ग है और शेष दूसरे सभी उनके अनुसङ्ग हैं। प्रथम दस अङ्ग प्रवेशद्वार स्वरूप हैं। उसके पश्चात् दस अङ्ग भक्तिके प्रतिकूल निषेध और अनुकूल ग्रहण हैं। उनमेंसे धात्री, अश्वत्थ, गो, विप्र इत्यादि सम्बन्धी कार्यसमूह समाजनिष्ठ कर्त्तव्य विशेष हैं। वे भी पहले-पहल भक्तिके अनुकूल होते हैं। साधन जितना ही परिपक्व होता जाता है, उतना ही चौसठ अङ्गोंमेंसे अंतिम पांच अङ्ग मात्र विशेष रूप से पालनीय होते जाते हैं।

साधनका रहस्य

साधन पर्वमें एक रहस्य है। अप्राकृत ज्ञान, भक्ति और इतरवैराग्य—ये तीनों ही एक ही साथ समान-समान रूपमें वृद्धि प्राप्त होते हैं। जहाँ इस नियमका व्यतिक्रम देखा जाय, वहाँ यह समझना चाहिए कि साधनके मूलमें कुछ दोष है (ग)। सर्वत्र ही साधुसङ्ग और गुरु कृपाके अतिरिक्त विपथमें गिरनेसे बचना असम्भव है। श्रीमन्महाप्रभुजी कहते हैं—

(क) लीलाके समस्त उपकरण ही तदीय हैं; जैसे—वृन्दावनके समस्त उद्दीपक और संगीगण तथा नवद्वीपके मृदंग, करताल आदि उपकरण। इन सबका सम्मान और आदर करना चाहिए।

(ख) कार्तिक १, माघ-स्नान २, वैशाख-व्रत ३।

(ग) भक्तिः परेशानुभवो विरक्तिरन्यत्र चैष त्रिक एककालः।
प्रपद्यमानस्य यथाश्नतः स्युस्तुष्टिः पुष्टिः क्षुदपायोऽनुघासम् ॥ (भा० ११।२।४२)

"एक अङ्ग साधे केह साधे बहु अङ्ग ।
निष्ठा हइते उपजय प्रेमेर तरंग ॥"

एक-एक अङ्गका साधन करनेवाले साधकोंमें श्रीमन्महाप्रभुजीने परीक्षितजी (श्रवण), शुक (कीर्तन), प्रह्लाद (स्मरण), लक्ष्मी (पादसेवन), पृथु (अर्चन), अक्रूर (वन्दन) हनुमान (दास्य), अर्जुन (सख्य), और बलि (आत्मनिवेदन) आदि के उदाहरण दिये हैं । अनेक अङ्गोंके साधकोंमें अम्बरीष महाराजका उदाहरण दिया जा सकता है ।

पारमहंस्य अवैध नहीं है

साधन कालमें जब तक साधकके हृदयमें भोग आदिकी कामनाएँ रहती हैं, तबतक वर्णाश्रम आदि धर्मकी अपेक्षा रहती है । जो लोग सब प्रकारकी कामनाओंका सर्वथा परित्याग करके शास्त्र-विधियों के अनुसार साधनमें तत्पर हो जाते हैं, वे तीनों ऋणोंसे मुक्त हो जाते हैं (क) ।

"काम त्यजि कृष्णभजे शास्त्र आज्ञा मानि ।
देव ऋषि पित्रादिकेर कभु नहे ऋणि ॥"

निष्काम साधन उपस्थित होने पर वैध धर्म छुट जाते हैं । फिर भी निषिद्धाचारमें मति नहीं होती । शुद्ध साधनभक्तके लिए कभी भी पापाचरण सम्भव नहीं है । यदि अकस्मात् अनजानमें पाप कार्य हो भी जाय तो कर्म-प्रायश्चित्त आवश्यक नहीं होता । (ख) ।

ज्ञान और वैराग्यादि भक्तिके सोपान या अङ्ग नहीं है

कुछ लोग ऐसा समझते हैं कि पहले ज्ञान और वैराग्य लाभ करके भक्तिका उन्नति साधन करना उचित है । परन्तु यह उनकी भूल है । श्रीमन्महाप्रभुजी कहते हैं—

"ज्ञान वैराग्यादि भक्तिर कभु नहे अंग ।"

भक्ति एक स्वतंत्र वृत्ति है, ज्ञान और वैराग्यादिकी क्रिया प्रायः भक्तिदेवीके दासके रूपमें दूर-दूरमें ही होती है (ग) अहिंसा, यम, नियम आदि धर्म भक्तिके स्वाभाविक संगी हैं । उनके लिए पृथक् शिक्षा आदिके प्रयासकी आवश्यकता नहीं होती ।

फिर भी श्रीमन्महाप्रभुजीने इस विषयमें कहा है—

वैधीभक्ति साधनेर कहिल विवरण ।
रागानुगा भक्तिर लक्षण सुन सनातन ॥
रागात्मिका भक्ति मुख्या व्रजवासिगणे ।
तार अनुगत भक्तिर रागानुगा नामे ॥
इष्टे गाढ़ तृष्णा राग स्वरूप लक्षण ।
इष्ट आविष्टता तटस्थ लक्षण कथन ॥

(क) देवर्षिभूताप्तनृणां पितृणां न किंकरो नायमृणी च राजन् ।
सर्वात्मना यः शरणं शरण्यं गतो मुकुन्दं परिहृत्य कर्त्तम् ॥
(ख) स्वपादमूलं भजतः प्रियस्य त्यक्तान्यभावस्य हरिः परेशः ।
विकर्म यच्चोत्पतितं कथंचित् धुनोति सर्वं हृदि सन्निविष्टः ॥ (भा० ११।५।३८)
(ग) तस्मान्मद्भक्तियुक्तस्य योगिनो वै मदात्मनः ।
न ज्ञानं न च वैराग्यं प्रायः श्रेयो भवेदिह ॥ (भा० ११।२०।३१)

रागमयी भक्तिर हय रागात्मिका नाम ।
ताहा सुनि लुब्ध हय कोन भाग्यवान् ॥
लोभे व्रजवासीर भावे करे अनुगति ।
शास्त्रयुक्ति नाहि माने रागानुगार प्रकृति ॥
बाह्य अभ्यन्तर इहार दुइत साधन ।
बाह्ये साधक देहे करि श्रवण कीर्तन ॥
मने निज सिद्धदेह करिया भावन ।
रात्रि-दिने करे व्रजे कृष्णेर सेवन ॥
निजाभीष्ट कृष्णप्रेष्ठ पाछेते लागिया ।
निरन्तर सेवा करे अन्तर्मना हञा ॥
दास सखा पित्रादि प्रेयसीर गण ।
रागमार्गे निज-निज भावेर गणन ॥
एइमत करे येवा रागानुगा भक्ति ।
कृष्णेर चरणे तार उपजय प्रीति ॥
प्रीत्यंकुरे रतिभाव हय दूइ नाम ।
याहा इहते वश इन श्रीभगवान् ॥
एइत कहिल अभिधेय विवरण ।"

वैधी साधन भक्ति और रागानुगा साधन भक्ति का प्रभेद दिखला कर श्रीमन्महाप्रभुजीने अभिधेय साधन तत्त्वकी समाप्ति की है। चतुर्थ वृष्टिमें रागानुगा तत्त्वका विचार परिस्कार रूपसे किया गया है।

क्रम पथ ही कल्याणप्रद है

कुछ अपववसिद्धान्त वाले व्यक्तियोंका यह कहना है कि भक्तिमें साधनकी आवश्यकता नहीं है। उन लोगोंको या तो वर्णाश्रम-धर्म जीवन अच्छा लगता है अथवा सम्पूर्ण रूपसे प्रेम भक्ति का कृत्रिम लक्षण ही। हम भक्ति सम्बन्धी उपदेशों में ऐसा देख पाते हैं कि क्रम-सोपान ही अच्छा और अर्थजनक है। सर्वप्रथम धर्म-जीवनमें वर्णाश्रम के प्रति निष्ठा आवश्यक है, पीछे क्रमोन्नति पूर्वक वैध भक्तजीवन अवश्य ही उपस्थित होगा। और अंतमें प्रेमभक्ति होने पर जीवनकी सम्पूर्णता होगी (क)। अधिकारमें उन्नति होने पर आकारमें कुछ-कुछ अवश्य ही परिवर्तन होता है।

कर्म आत्माका धर्म नहीं है

कुछ लोग ऐसा समझते हैं कि इस क्रमका अवलम्बन करनेसे मनुष्य जीवनमें अवनति होती है। कृषक, सौदागर, राजकर्मचारी, कायस्थ एवं धर्म व्यवसायी ब्राह्मण—ये क्रमशः उन्नत होकर अंतमें ब्राह्मणत्वको तथा चरमावस्थामें संन्यासके साथ ब्रह्मत्वको प्राप्त होते हैं, यह केवल आत्मवंचना मात्र है (ख)। उक्त धर्मजीवन केवल पार्थिव उन्नतिकी कल्पना करता है। वह प्रतिज्ञा करके भी उन्नति नहीं कर पाता। ऐसे पार्थिव जीवनको अतिक्रम कर पारमार्थिक जीवनको सहज ही प्राप्त करनेके लिये ही श्रीमन्महाप्रभुजीके उपदेश हैं।

(क) सतां प्रसगान्मम वीर्यसंविदो भवन्ति हृत कर्णरसायनाः कथाः ।
तज्जोषणादाश्वपवर्गवर्त्मनि श्रद्धारतिर्भक्तिरनुक्रमिष्यति ॥ (भा० ३।२०।२२)

(ख) मतिर्न कृष्णे परतः स्वतो वा मिथोऽभिपद्येत गृहव्रतानाम् ।
अदान्त गोभिर्विशतां तमिस्रं पुनः पुनश्चर्वितचर्वणानाम् ॥ (भा० ७।५।२३)

साधन भक्तिसे ही आत्मोन्नति होती है

वर्णाश्रमधर्मं पालनसे देहयात्राका सहज ही निर्वाह होता है । योग आदिसे मानसिक उन्नति होती है । किन्तु साधन भक्तिसे आत्मोन्नति होती है । यदि कोई साधक एक पक्का कृषक, सुदक्ष, व्यपारी या चतुर योद्धा न भी हो तौभी वह अपने अधिकारसे अच्युत मानव जीवनके कौशलमें परिपक्व है । जिस प्रकार एक चतुर राजमंत्री बन्दूक और तोप आदि छोड़नेके कार्यमें भले ही विशेष दक्ष नहीं हो, तथापि सभी योद्धाओंके मस्तकके रूपमें सबके ऊपर रह कर वही युद्धादिकी व्यवस्था करता है; उसी प्रकार जो लोग साधक भक्तकी सर्वत्र ही उच्चता देख पाते हैं, वे ही वास्तवमें बुद्धिमान हैं । वे अवश्य ही भगवानकी कृपा प्राप्त कर चुके हैं ।(क)

— जगद्गुरु श्रील भक्ति विनोद ठाकुर

साधुसंगमें तीर्थ दर्शनका सुवर्ण सुयोग

आगामी १६ अक्टूबर सोमवारको हावड़ासे तीर्थ यात्रा उठेगी । गया, काशी, प्रयाग, अयोध्या, लखनऊ, हरिद्वार, हृषिकेश, कुरुक्षेत्र, दिल्ली, मथुरा, गोकुल वृन्दावन, गोवर्द्धन, राधाकुण्ड, वरसाना, नन्दग्राम, आगरा, जयपुर, पुष्कर, उज्जैन, नाथद्वार, डाकोरजी, नासिक पंचवटी, बम्बई, पूना, कबूर, भुवनेश्वर, साक्षीगोपाल और पुरी आदि भारत के लगभग ५० प्रधान प्रधान तीर्थोंके दर्शन होंगे । प्रतिदिन भागवत पाठ, कीर्तन, हरिकथा और धाम माहात्म्य श्रवण और महाप्रसाद भोजनकी व्यवस्था है ।

रेल, बस, और कुलीभाड़ा तथा दोनों शाम महाप्रसादके लिये ४००) भिक्षास्वरूप प्रत्येक यात्रीको देना होगा । जिसमें २००) २ अक्टूबरसे पूर्व जमा करना होगा । बाकी २००), १६ अक्टूबरको हावड़ा स्टेशन पर जमा देना होगा । एक मासका समय लगेगा ।

विशेष जानकारी और रुपये जमा करने आदिका पता—परिव्राजाचार्य १०८ श्रीश्रीमद्भक्ति प्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज, श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ, तेघरिपाड़ा, पो०—नवद्वीप (नदिया) प. बंग ।

(क) यदा यस्यानुगृह्णाति भगवानात्मभावितः । स जहाति मतिं लोके वेदे च परिनिष्ठिताम् ॥ (भा० ४।२९।४३)

यो वा मयीशे कृतसौहृदार्थो जनेषु देहान्तरवार्तिकेषु ।

गृहेषु जायात्मजरातिमत्सु न प्रीतियुक्ता यावदर्थाश्च लोके ॥ (भा० ५।५।३)

वैष्णव पहिचान

हम सर्वदा ही यह सुनते आ रहे हैं कि श्रीगुरु-वैष्णवोंकी कृपा ही जीवोंके मुख्य प्रयोजनकी प्राप्ति का एकमात्र उपाय है और श्रीगुरुवैष्णवोंकी कृपासे ही श्रीभगवानकी कृपाकटाक्षको प्राप्त किया जा सकता है। ऐसा भी सुना जाता है कि गुरुवैष्णवों की कृपा अहैतुकी होती है, उसमें कोई जागतिक कारण नहीं होता। अहैतुकताका वास्तविक अर्थ न समझनेके कारण ही कभी कभी हम गुरुवैष्णवोंकी कृपाको एक काल्पनिक रूप दे बैठते हैं। हम ऐसा सोचते हैं कि हमें गुरु-वैष्णवोंके प्रति सेवानिष्ठा प्राप्त करनेके लिये प्रयास करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है और यदि हम अपने मतानुसार कार्य करते रहें, तो एक दिन हठात् श्रीगुरु-वैष्णवोंकी कृपासे सर्वार्थ सिद्धि हो जायगी। हम जैसे बद्ध, भोक्ताभिमानी और मनोधर्मी जीव ऐसा सोचते हैं कि भजन-साधन साधु-गुरु-कृपाके बिना ही स्वतन्त्ररूपसे कर सकते हैं।

जो व्यक्ति ऐसा कहते हैं, वे यह नहीं जानते कि सन्तोंकी कृपा और जीवके लिये सेवाका आग्रह—ये दोनों स्वतन्त्र वस्तुएँ नहीं हैं। उनकी इस प्रकारकी कपटता पूर्ण उक्तिसे यही जाना जाता है कि ऐसे व्यक्ति वास्तवमें हृदयसे वैष्णवोंकी कृपा प्राप्त करने के लिये उत्सुक नहीं हैं। हमारे पूर्व महाजनोंने वैष्णवोंकी कृपा प्राप्त करनेका उपाय बतलाया है—

जे जन वैष्णव, चिनिया लइया आदर करिबे जबे।
वैष्णवेर कृपा जाहे सर्वसिद्धि, अवश्य पाइबे तबे॥

भगवत्भजनके तारतम्यसे वैष्णवोंकी तीन श्रेणियाँ हैं—कनिष्ठ, मध्यम और उत्तम। वैष्णवोंके अधिकार और योग्यताका विचार कर उन्हें उसीके अनुसार आदर करना चाहिये। कनिष्ठाधिकारीको उत्तमाधिकारीका सम्मान अथवा मध्यमाधिकारीके साथ कनिष्ठाधिकारीकी तरह व्यवहार करनेसे वैष्णवोंका आदर सम्यक् रूपसे नहीं होता। वैष्णवों के सहित यथार्थ व्यवहार करनेसे ही ज्ञात और अज्ञात वैष्णवापराधोंसे दूर रहा जा सकता है। उसी समय वैष्णवोंकी सर्वसिद्धिप्रदायिनी अमायिक कृपासे स्वरूपकी उपलब्धि होती है।

इसलिये वैष्णवोंको पहिचाननेकी नितान्त आवश्यकता है। वैष्णवोंको पहिचाननेसे हृदयमें आदर या ममताका स्वतः ही उदय होता है। अपने भ्राताको भ्राताके रूपमें जाननेके साथ-साथ ही पूर्व अनास्वादित भ्रातृस्नेह हृदयमें उमड़ पड़ता है। उस समय समयकी अपेक्षा नहीं रह जाती। इसी प्रकार वैष्णवोंमें स्वजन-ज्ञान, अपना ज्ञान या बान्धव ज्ञान होना परमावश्यक है। यह जानना ही पर्याप्त नहीं है कि वैष्णवगण मुझे कितना स्नेह करते हैं या अपना समझते हैं, क्योंकि मैं वैष्णवोंका स्नेह भाजन हूँ और इसलिये मुझपर उनकी कृपा होगी—यह विचार हृदयके अन्तरमें अवस्थित भोगपिपासा का ही बाहरी प्रकाश है। मेरी वैष्णवोंके प्रति कितनी ममता हुई है, यही विचार ही सर्वार्थसिद्धि-का सूचक है। जब तक वैष्णवोंके प्रति हमारी आत्म-बुद्धि नहीं होती तब तक यह जानना असम्भव है कि मेरे प्रति वैष्णवोंकी कितनी ममता है।

वैष्णवोंको पहचाननेके लिये या उनके प्रति ममता पैदा करनेके लिये हमें कुछ बातोंकी ओर

ध्यान देना चाहिये। प्राकृत-दृष्टिसे वैष्णवोंको देखने से हमें जिस प्रकार उनमें दोष दिखलाई पड़ते हैं, उसी प्रकार उनमें कुछ गुण भी दिखलाई पड़ते हैं। वैष्णवोंका स्नेह, विनीत व्यवहार, स्वभावसुलभ क्षमा और उदारता हमें अधिकांश समय ही आकृष्ट करती हैं। इन गुणोंको दृष्टिमें रखते हुए किसी वैष्णवकी वैष्णवताका हम लोग विचार करते हैं। ये गुण ही हमें आकर्षण कर वैष्णवोंके प्रति एक ममत्वाभासका उदय करा देते हैं। हमें यह विचार करना उचित है कि ऐसे बाहरी गुणदर्शनके द्वारा स्वरूप विचार और उन सभी अनुकूल गुणोंके द्वारा उत्पन्न ममत्वके द्वारा क्या वास्तविक वैष्णवदर्शन और वैष्णवोंके प्रति आदर हो सकता है या नहीं? वैष्णवोंको उनकी वैष्णवताके द्वारा पहचानना और आदर करना चाहिये। विष्णुकी ऐकान्तिकी सेवा-परायणता ही वैष्णवता है। यही वैष्णवोंका स्वरूप लक्षण हैं।

वैष्णवोंको पहचाननेके लिये हमें यही देखना चाहिये कि उनमें विष्णुसेवापरता कहाँ तक है।

श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामीजीने वैष्णवों के जिन चौबीस गुणोंका वर्णन किया है, उनमेंसे कृष्णैक शरणता ही वैष्णवका स्वरूपलक्षण है। यही वैष्णवोंका वैष्णवत्व है। अन्य तेइस गुण इस स्वरूपलक्षणके आश्रयमें प्रकाशित होकर उसका माधुर्य बढ़ाते हैं। वैष्णवोंमें वैष्णवताके साथ-साथ ये सभी गुण विद्यमान रहते हैं। ऐसा होना असम्भव है कि कोई व्यक्ति वैष्णव होकर मृदु या सुशील न हो। किन्तु वैष्णवताके तारतम्यसे इन सभी गुणोंका विकाश-तारतम्य हो सकता है। यहाँ यह लक्ष्य करनेकी बात है कि इन गुणोंके सम्बन्ध-में हमारी जैसी साधारण धारणा है, श्रील कविराज गोस्वामीजीकी वैसी धारणा नहीं है। साधारणरूपसे विचार करने पर हमारी ऐसी धारणा होती है कि श्रील कविराज गोस्वामीजीने जिन गुणोंका वर्णन किया है, ये सभी गुण वैष्णव व्यतीत दूसरे वर्णाश्रमधर्मपरायण व्यक्तिमें भी हो सकते हैं। किन्तु यह बात ठीक नहीं है। वास्तवमें वैष्णवोचित गुण अवैष्णव व्यक्तिमें कदापि नहीं हो सकते। 'वैकुण्ठ' शब्दका वाच्य वस्तु इस संसार की वस्तुकी तरह संकीर्ण, अनित्य या स्थूल नहीं है। इस संसारमें जागतिक शब्द जिन सभी वस्तुओं को उद्देश्य करते हैं, वे सभी वस्तु नितान्त तुच्छ हैं। इसलिये एक ही गुण वैष्णव और वैष्णवेतर व्यक्तिमें हो सकता है, ऐसा विचार केवल स्थूल-दर्शियोंका ही हो सकता है। उदाहरणके लिये "वदान्यता" वैष्णवोंका एक गुण है। "वदान्यता" शब्द अज्ञरूढ़िवृत्तिमें जो अर्थ निर्देश करता है, वह साधारण मनुष्यमें देखा जा सकता है। किन्तु अर्थ विज्ञरूढ़िवृत्तिमें यह शब्द जो प्रकाश करता है, वह अर्थ केवल वैष्णवोंके प्रति ही प्रयोग हो सकता है।

किन्तु हमें यह विचार करना चाहिये कि वैष्णवों के इस गुण वैशिष्ट्यको विचार करनेका कौन अधिकारी है? वैष्णवोंकी वैष्णवताका आदर करने की आवश्यकता वे ही जान सकते हैं जिन्होंने वैष्णवताका श्रेष्ठत्व उपलब्धि किया है अर्थात् जो सेवोन्मुख हुए हैं। निष्कपट शरणागत व्यक्तिके

निकट ही वैष्णवोंके गुण भी यथार्थ स्वरूपमें प्रकाशित होते हैं । जो व्यक्ति वैष्णवोंके गुणोंको प्राकृत गुणसाम्यमें दर्शनकर अपराध नहीं करते, वे ही वैष्णवोंके अप्राकृत और असाधारण गुणोंका दर्शन करते हैं। हम जैसे सेवाविमुख व्यक्ति वैष्णवता की दृष्टिसे वैष्णवोंका दर्शन कर नहीं पाते । हम अधिकतर वैष्णवोंके स्नेहपूर्ण व्यवहारसे आकृष्ट होते हैं। वैष्णवोंके धैर्य सहिष्णुता आदि गुणोंकी प्रशंसा भी करते हैं । किन्तु हमें यह जानना आवश्यक है कि वैष्णवोंके ये सभी गुण किसी भी व्यक्तिके इन्द्रिय तर्पणके विषय नहीं हैं।

वैष्णवोंका स्नेह, धीरता आदि गुण यदि हमें विष्णु-वैष्णव-सेवाकी ओर आकृष्ट नहीं करते और ये सभी गुण यदि वैष्णवोंकी वैष्णवताके प्रति हमें आकृष्ट नहीं करते, तो यही समझना चाहिये कि वास्तवमें हमें वैष्णवोंके वास्तविक गुणोंका दर्शन नहीं हुआ है अथवा उसके द्वारा हम अपने इन्द्रिय-तर्पणकी चेष्टा करते हैं।

वैष्णवोचित गुण सभी वैष्णवोंमें अवश्य ही रहेंगे। प्राकृत दृष्टिसे दर्शन कर यदि हम कहें कि श्रीलकृष्णदास कविराज गोस्वामीजी कवि थे, किन्तु श्रीशिवानन्द सेन या श्रीचैतन्यमहाप्रभुके सेवक श्रीगोविन्दकी वैसी कवित्व-शक्ति नहीं थी, तो इसका तात्पर्य यह हुआ कि हमें वैष्णवोंके कवित्व-गुणका दर्शन नहीं हुआ । श्रील कविराज गोस्वामीजीको एक साधारण साहित्यिक समझ कर उनमें प्राकृत कवित्वरूप एवं प्राकृत गुणका दर्शन मात्र हुआ।

प्राकृतबुद्धिविशिष्ट व्यक्ति वैष्णवोंकी कृष्णैक-शरणताका दर्शन नहीं कर सकते, वे केवल वैष्णवों को साधारण मनुष्य समझकर उनमें दोष, गुणाभास आदिका दर्शन करते हैं। किसी वैष्णवमें साधारण मनुष्यकी तरह गांभीर्य आदि गुणोंको देखकर उनकी प्रशंसा करते हैं और उससे ही वे लोग वैष्णवोंकी वैष्णवताका विचार करते हैं। यदि कोई वैष्णव अपने इस गुणको प्रकाशित नहीं करते, उन्हें वे वैष्णव नहीं कहते । यदि वे ऐसा कहते भी हैं, तो वे लोग यही कहेंगे कि इनमें वैष्णवता तो है परन्तु अमुक वैष्णवकी तरह गांभीर्य नहीं है। ऐसा कहना बिलकुल निरर्थक है । वैष्णवोंके दोषाभास हमारे लिये अरुचिकर होनेके कारण वैष्णवोंके प्रति असूया प्रकट करना जिस प्रकारसे नरकप्रापक है, उसी प्रकारसे वैष्णवोंके गुणाभास हमारे इन्द्रिय तृप्तिकर होनेके कारण वैष्णवोंके प्रति ममता प्रकाश करना भी उचित नहीं है । दोनों स्थलोंमें ही दर्शक की प्राकृत दृष्टि है, अप्राकृत वैष्णवको पहचानना उनके लिये संभव नहीं है। इसलिये हमें यह ध्यान रखना चाहिये कि वैष्णवोंको पहचानते समय किसी प्राकृतगुणयुक्त अथवा प्राकृतगुणहीन व्यक्तिको वैष्णव समझ न बैठे।

भक्तोंका कहना है कि—"वैष्णव चिनिते नारे देवेर शक्ति" । फिर हम जैसे असहाय दुर्बल, अज्ञ और मूर्ख व्यक्ति वैष्णवोंको कैसे पहचान सकते हैं ? वैष्णवोंकी वैष्णवताको कैसे जान सकते हैं ? जब तक सम्बन्धज्ञानका अभाव है और वैष्णवोंकी कृपाके प्रति अविश्वास है, तब तक नाना प्रकारके कुतर्क और सन्देह हमें वैष्णवोंकी कृपासे वञ्चित रखते हैं । किसी वैष्णवने इस प्रश्नका अति सुन्दर और सुयुक्तिपूर्ण उत्तर प्रदान किया था। उन्होंने कहा

था कि यह बाततो सत्य है कि देवता भी वैष्णवोंको पहचान नहीं पाते । इसलिये भयभीत होनेका क्या कारण है ? हो सकता है कि देशके सम्राट मेरी जननीको न जाने, किन्तु इसलिये क्षुद्र शिशु होकर अपनी जननीको जाननेमें मुझे कोई कष्ट नहीं है। बचपनमें मैं अपनी जननीको जननीके रूपमें नहीं जानता था और उनके स्नेहको जाननेकी शक्ति भी मुझमें नहीं थी । किन्तु मेरे नहीं जाननेके कारण मेरी माता उस समय मेरी जननी नहीं थी और मैं मातृ-स्नेहसे वंचित था, ऐसा कहना भी ठीक नहीं है। यद्यपि उस समय मैं अपनी माताको माताके रूपमें नहीं जानता था, तथापि उस समय माताके साथमें मेरा सम्बन्ध था और मैं उनके स्नेहसे उस समय भी वंचित नहीं था। माताके स्नेहसे पुष्ट होकर ही मैं प्राप्त-वयस्क होनेपर यह जान सका कि माताके साथमें मेरा क्या सम्बन्ध है और मातृ-स्नेह किसे कहते हैं । बचपनमें माताको जानता नहीं था, इस लिये मातृ-स्नेह मेरे ऊपर वर्षित होने पर भी उसके माधुर्यकी उपलब्धि नहीं कर सका । किन्तु माताके स्नेह-यत्नसे जब बड़ा हुआ, तब माताके स्नेह और कृपासे ही उनको जानकर उनके प्रति मेरी ममता हुई । साधक भक्त मध्यम अधिकारमें पहुँचने पर जे जेन वैष्णव चिनिया लइया" (अर्थात् वैष्णवोंको पहचानकर) उनके प्रति ममतायुक्त होते हैं, उस समय ही वे वैष्णवोंकी कृपा लाभ करते हैं । मध्यम अधिकार प्राप्त करना भी वैष्णवोंके ही कृपा-सापेक्ष हैं। वैष्णवोंकी कृपा सर्वकाल ही क्रियावती होती है। अनर्थयुक्त बहिर्मुख जीव कनिष्ठाधिकारमें 'नाम' सेवा करनेकी प्रवृत्ति भी वैष्णवोंकी कृपासे ही प्राप्त करते हैं कि किन्तु कनिष्ठाधिकारी इसे जान नहीं सकते। यही उनका कनिष्ठत्व है । कनिष्ठाधिकारी वैष्णवोंकी कृपाको अनजानमें ही प्राप्त करते हैं। वैष्णवोंकी कृपा उस समय उनके ऊपर अज्ञातरूपसे वर्षित होती है और मध्यम अधिकारमें पहुँचाती है। वे वैष्णवोंके कृपासे ही वैष्णवोंको जानकर उनके प्रति आदरयुक्त होते हैं । वैष्णवोंके साथ हमारा सम्बन्ध नित्य है; हमें नये सम्बन्ध स्थापन करनेकी आवश्यकता नहीं होती। इस सम्बन्धको जानना ही हमारा कर्त्तव्य है; वह उनके कृपाबलसे ही होता है, इसलिये संकोच करनेकी क्या आवश्यकता है ?

वैष्णवजनोंमें मेरी कितनी आत्मीयता है और उनके प्रति कितना आदरका भाव है—यह अवैष्णवों के प्रति मेरी उदासीनता कितनी है—इसी तथ्यसे जाना जा सकता है । जबतक अवैष्णवोंके प्रति सम्पूर्णरूपसे अनादर और अनात्मीय बुद्धि नहीं होती, तबतक वैष्णवोंके प्रति आत्मीयज्ञान होनेकी संभावना नहीं है । जितने परिमाणमें अवैष्णवोंके प्रति परबुद्धि होगी, उतने ही परिमाणमें वैष्णवोंके प्रति स्वजन ज्ञान होगा । यदि हम वास्तवमें वैष्णवोंसे सम्बन्धयुक्त होना चाहते हैं तो हमें सबसे पहले अवैष्णवोंके प्रति ममताका त्याग करना होगा। हमारे माता, पिता, भाई, बन्धु और आत्मीय स्वजन की तो बात ही क्या, यदि हमारी देह और मन भी वैष्णव-सेवामें बाधा देते हैं, तो उन चैतन्य विमुख स्वजनोंको अपना न जानकर उनके साथ सम्पूर्ण रूप से सम्बन्ध-विच्छेद करना चाहिये । जब तक ऐसा नहीं होता तबतक वैष्णवोंके प्रति ममता दिखलाना कपटता मात्र है । यह बात सम्पूर्ण विरुद्ध है कि अवैष्णवोंमें अनात्मीयज्ञान नहीं हुआ, किन्तु फिर भी वैष्णवोंके प्रति आत्मीयज्ञान या ममता हो गई ।

(श्रीगौड़ीय पत्रिकासे सभार)

अनुवाद—श्रीसत्यपाल ब्रह्मचारी, बी० ए० ।

प्रचार-प्रसंग

झूलन-उत्सव

गत २ भाद्र, १८ अगस्त, मङ्गलवार एकादशीसे लेकर, ७ भाद्र, २३ अगस्त, रविवार पूर्णिमा तक श्रीश्रीराधाविनोदविहारीजीका झूलनमहोत्सव श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरामें बड़े समारोहके साथ सम्पन्न हुआ है। सभा-मण्डप, हिंडोला और श्रीमन्दिर नाना प्रकारकी आलोकमालाओं, रंग विरंगे वस्त्रों, कदली वृक्षों तथा आम्रपल्लवोंसे सुसज्जित हो रहे थे। नित्य-प्रति नयी-नयी झाँकियाँ, विराट संकीर्तन, प्रवचन आदि महोत्सवके मुख्य आकर्षण थे। दर्शकोंकी बड़ी भीड़ने प्रतिदिन झूलनका दर्शन किया तथा हरिकथाका श्रवण किया।

श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ मथुराके अतिरिक्त श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके मूल मठ श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ, नवद्वीप, श्रीउद्धारण गौड़ीय मठ, चुचुड़ा तथा श्रीगोलोकगंज गौड़ीय मठ आसाममें भी यह महोत्सव महा समारोहके साथ मनाया गया है। श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ, नवद्वीपके नव निर्मित विशाल मन्दिर एवं तत्संलग्न विशाल नाट्य मन्दिरमें झूलेकी एक अभूतपूर्व निराली ही छटा दृष्टिगोचर हुई। श्रीश्रीराधाविनोद विहारीजीके झूलेकी सजावटके साथ-साथ वहाँ श्रीकृष्णकी अनेकानेक ललित लीलाओंके विशिष्ट चित्र प्रस्तुत किये गये थे, जो विद्युतके माध्यमसे परिचालित होकर दर्शकोंको आश्चर्य चकित कर देते थे। भौतिक विज्ञानका यह चमत्कार भगवानकी सेवामें नियुक्त होकर भावुक भक्तोंको आनन्दित करता हुआ स्वयं भी सफल हो रहा था। प्रतिदिन शामके ७ बजेसे लेकर ११॥ बजे राततक दर्शकोंकी भीड़ लगी रहती थी। श्रीनवद्वीपके लिये यह दृश्य सर्वथा नवीन था।

श्रीबलदेवाविर्भाव

गत ७ भाद्र, २३ अगस्त रविवार पूर्णिमाके दिन श्रीश्रीबलदेव प्रभुकी आविर्भाव तिथि समितिके समस्त शाखा मठोंमें उपवास-कीर्तन और भाषण, प्रवचनके माध्यमसे पालित हुई है। श्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें उक्तदिन एक विशेष धर्मसभा हुई थी, जिसमें श्रीबलदेव तत्त्वकी विषद्रूपमें आलोचना की गयी।

श्रीजन्माष्टमी

पिछले वर्षोंकी भाँति इस वर्ष भी गत १४ भाद्र, ३० अगस्त, रविवारको समितिके सभी मठोंमें श्रीकृष्ण-जन्माष्टमी व्रतोपवास और दूसरे दिन शुक्रवारको श्रीनन्दोत्सव विराट समारोहके साथ सुसम्पन्न हुए हैं।

श्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें इसवर्ष उक्त दिवस श्रीमन्दिर और सभामण्डपको आम्रपल्लव, कदली-वृक्ष, तथा आलोकमालाओंके द्वारा खूब सजाया गया था। सबेरेसे मध्यरात्रितक श्रीमद्भागत दशमस्कन्धका पारायण चलता रहा। श्रीकृष्णस्वामीदास ब्रह्मचारी, श्रीहरिदास ब्रजवासी "सेवा कौस्तुभ", श्रीपीताम्बर दासाधिकारी (S. D. O. M.E. S.) और अन्तमें त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद्भक्ति वेदान्त नारायण महाराजजीने श्रीकृष्ण तत्त्वके विभिन्न पहलुओं पर बड़े ही रोचक और विद्वतापूर्ण भाषण दिये। दूसरे दिन श्रीनन्दोत्सवके अवसर पर निमन्त्रित-अनिमन्त्रिक सैकड़ों व्यक्तियोंको विविध प्रकारका सुस्वादु भगवत् महाप्रसाद वितरण किया गया।

श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ, वृन्दावनमें झूलन महोत्सव

श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ, वृन्दावनके नवनिर्मित वृहत् संकीर्तन भवनका उद्घाटन महोत्सव तथा श्रीश्रीराधा-गोविन्दजीका झूलन महोत्सव गत १४ अगस्तसे २३ अगस्त तक श्रीचैतन्य गौड़ीय मठाध्यक्ष परिव्राजकाचार्य त्रिदण्डि स्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिदयित माधव महाराजजीकी अध्यक्षतामें महासमारोहके साथ सम्पन्न हुआ है। इस महोत्सवके प्रधान आकर्षण दैनिक धर्मसभा और विद्युतशक्ति द्वारा परिचालित हिंडोला और विविध प्रकारकी कृष्ण-लीलाओंके मनोहारी दृश्य थे। धर्मसभामें श्रीचैतन्य मठाध्यक्ष श्रीमद्भक्तिदयित माधव महाराज, श्रीमद्भक्तिहृदय वन महाराज, श्रीमद्भक्ति भूदेव श्रौती महाराज, श्रीमद्भक्तिदेशिक आचार्य महाराज, श्रीमद्भक्तिसौरभसार महाराज, श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराज, श्रीमद्भक्ति बल्लभ तीर्थ महाराज, श्रीमद् गोवर्धन ब्रह्मचारी, पण्डित श्रीकृष्णदासजी, श्रीमद्राघवदास शास्त्री, श्रीरामदास शास्त्री आदि त्रिदण्डिचरणों तथा स्थानीय प्रसिद्ध विद्वानोंके भाषण हुए। वैद्युतिक शक्ति द्वारा परिचालित अभिनव एवं मनोहर कृष्ण-लीलाओं एवं हिण्डोलेका दर्शन करनेके लिये प्रतिदिन दर्शनार्थियोंकी बड़ी भीड़ लगी रहती थी।

— प्रकाशित

श्रीश्रीराधाष्टमी-व्रत

गत २९ भाद्र, १४ सितम्बर को समितिके समस्त शाखा मठोंमें श्रीश्रीराधाष्टमीका महोत्सव खूब समारोहके साथ मनाया गया है। श्रीकेवजी गौड़ीय मठमें उक्त दिवस त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद्-भक्ति वेदान्त नरायण महाराजसीने श्रीश्रीराधा तत्त्व के सम्बन्धमें पाण्डित्यपूर्ण शास्त्रीय विवेचन प्रस्तुत किया। दोपहरमें श्रीश्रीराधाविनोदविहारीजीका विशेषरूपसे भोगराग सम्पन्न होने पर उपस्थित सबको महाप्रसाद वितरण किया गया।